Open Access

IJASSH

International Journal of Arts, Social Sciences and Humanities

(A Quarterly, Refereed, & Peer Reviewed International Journal)
Published by: AAASSHER, Mumbai, (MS) India
Journal homepage: https://ijassh.aaassher.org/
ISSN (Online): 2584-1130
Volume 4, Issue 3, September 2026; Pages 42 – 45
DOI: 10.5281/zenodo.21788115

Original Research Article

हिंदी भक्ति साहित्य में गुरु-शिष्य परंपरा: एक अध्ययन

मंगल मुण्डा,[1] डॉ. रंजिता जेना[2]

[1]*शोधार्थी, हिंदी विभाग, कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, किस् मानित विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर 751024 ओडिशा, भारत*

[2]*सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, किस् मानित विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर 751024 ओडिशा, भारत*

Corresponding author E-mail: mangalmunda2021@gmail.com

Received: 24 July, 2026 | Accepted: 30 July, 2026 | Published: 04 August, 2026

सारांश:

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परंपरा प्राचीन समय से चली आ रही वह परंपरा है जिसमें गुरु को अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्य को प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परंपरा को अत्यंत प्राचीन और पूजनीय माना गया है। इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति में तो गुरु को भगवान से ऊंचा स्थान प्राप्त है। वैदिक काल से लेकर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन तक गुरु की भूमिका आध्यात्मिक, जीवन-दृष्टा और सामाजिक चेतना के वाहक के रूप में विकसित का मूल आधार रहा है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य में गुरु-शिष्य की यह परंपरा केवल ज्ञान प्रदान की औपचारिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्जागरण का सशक्त माध्यम के रूप में सामने उभरकर आती है। मध्यकालीन भारत में जब सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव और रूढ़ियां प्रबल थीं, तब भक्ति आंदोलन ने लोकभाषा में आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त कर जन चेतना को नई दिशा दी। गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की एक प्राचीन और पूजनीय परंपरा है, जो गुरु और शिष्य के बीच अद्वितीय संबंध को दर्शाती है। वैदिक काल से चली आ रही यह परंपरा आध्यात्मिक, कला, विज्ञान और दर्शन सहित विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान के प्रसार का आधार रही है। इस शोध आलेख में भक्ति साहित्य के निर्गुण और सगुण काव्य धाराओं में गुर-शिष्य परंपरा के स्वरूप, महत्व और सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द: भक्ति साहित्य, गुरु-शिष्य परंपरा, निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, आध्यात्मिक चेतना।

भक्ति साहित्य:

भक्ति साहित्य भारतीय इतिहास का चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी का वह कालखंड है, जिसमें हमारे व्यक्तित्व और संस्कृति का निर्माण हुआ है। वेदों और उपनिषदों के जिस सूक्ष्म दार्शनिक चिंतन से इस यात्रा का शुरुआत हुआ था, मध्यकालीन में 'भक्ति काव्य' के रूप में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची। भक्ति साहित्य ने प्राचीन ज्ञान परंपरा को लोकभाषा के माध्यम से जन-सामान्य के लिए सुलभ और व्यवहारिक बनाया। मध्यकालीन में जब समाज विभिन्न जातिगत भेदभाव, उच्च-नीच जैसे बाह्य आक्रमणों और आंतरिक कुरीतियों से जूझ रहा था, तब भक्ति आंदोलन ने इन प्राचीन स्रोतों से शक्ति ग्रहण कर एक नयी चेतना का संचार किया। विश्वनाथ त्रिपाठी के कथन अनुसार "हिंदी भक्ति साहित्य की परंपरा महाराष्ट्र के संत नामदेव से मिलने लगती है। संत नामदेव का जन्म 1267 में हुआ था। संत नामदेव ने हिंदी में भी रचनाएं की हैं। भक्ति काव्य-धारा के अंतर्गत हिंदी में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रैदास और मीरा जैसी महान प्रतिभाओं ने रचनाएं कीं। इन्ही की रचनाओं के कारण भक्ति-युग को हिंदी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है।"[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि भक्तिकालीन संत कवियों ने अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य को बदल दिया, जिसमें व्यक्तिगत भक्ति पर जोर दिया और जन्म आधारित श्रेष्ठता को नकार कर भक्ति को योग्यता का नया पैमाना बनाया। संस्थागत धर्म और औपचारिक अनुष्ठान की बाधाओं से मुक्त होकर, उन्होंने आत्मा के मामलों में व्यक्ति के अपने व्यक्तिगत अनुभव के महत्व पर जोर दिया। भक्तिकालीन कवियों ने संस्कृत के शास्त्रीय वर्चस्व को चुनौती देते हुए जन भाषाओं को अभिव्यक्त का माध्यम बना कर गुरु को ही ज्ञान का अंतिम स्रोत और मोक्ष प्राप्ति का आधार माना।

गुरु-शिष्य परंपरा:

भारतीय संस्कृति में गुरू शिष्य की परंपरा अति प्राचीन परंपरा रही है। इस परंपरा को अनेकों संतों ने ईश्वर से भी उच्च स्थान माने हैं। महान संत कबीरदास जी ने गुरु को भगवान से भी ऊंचा बताया है। वे गुरु महिमा करते हुए कहते हैं-

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागु पाय।

बलिहारी वा गुरु की, जिन गोविंद दियो मिलाय।।"[2]

संत कबीरदास जी ने जगह-जगहों पर गुरु महिमा का वर्णन किया है। वे जितना प्रधानता भगवान को नहीं माना गया उससे कहीं ज्यादा गुरु को माना है, क्योंकि गुरु ही एक मात्र संसार रूपी सागर को पार कराने वाली शक्ति है। उनका मानना है कि इस संसार में गुरु से बड़ा कोई नहीं है, गुरु ही एक मात्र हैं जो भगवान का साक्षत् दर्शन करा सकते हैं। गुरु महिमा के विषय में जायसी ने भी प्रदर्शन करने की कोशिश करते हुए लिखते हैं-

"तन चितउर मन राज कीन्हा, हिय सिंघल बुद्धि पदमिनि चीन्हा।

गुरु सूआ जेइ पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत का निरगुन पावा।।"[3]

इस तरह से हम देख सकते है कि जायसी ने भी कबीर की भांति गुरु महिमा का वर्णन करते है। यहां तक की तुलसीदास ने भी गुरु महिमा का अपाहर वर्णन करते हैं। उन्होंने 'रामचरितमानस' में गुरु का वंदना इन शब्दों में किया करते हैं -

बंदोऊ गुरु पद कंज, कृपया सिंधु नररूप हरि।

महा मोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकरि।।"[4]

तुलसीदास ने इस तरह से रामचरितमानस के आरंभ में गुरु महिमा का अत्यधिक सुंदर वर्णन किया हैं। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परंपरा अत्ययांत प्राचीन काल से चली आ रही वह परंपरा है जिसमें गुरु को अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्य को प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा प्रणाली की रीढ़ रही है। गुरुकुलों में शिष्य गुरु के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे, जहाँ उन्हें न केवल वेदों, शास्त्रों और कलाओं का ज्ञान प्रदान किया जाता था, बल्कि उन्हें सम्पूर्ण अनुशासन, सेवा, त्याग और समर्पण जैसे मानवीय मूल्यों का भी पाठ पढ़ाया जाता था। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत गुरु अपने शिष्य को शिक्षा देने का कार्य करते हैं यही सिलशिला निरंतर चली आ रही है। गुरु-शिष्य परंपरा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकता है। इस तरह की परंपरा का निर्वाह प्राचीन काल से गुरुकुल और आश्रमों में होता रहा था। भारतीय इतिहास स्पष्ट

करता है कि गुरु की भूमिका समाज को सुधारक की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शन का कार्य करती है। इसलिए गुरु का स्थान ईश्वर के समकक्ष माना गया है। निर्गुण काव्य धारा के सुप्रसिद्ध कवि कबीरदास जी ने तो गुरु को भगवान से भी ऊंचा और मोक्ष प्राप्ति का अंतिम स्रोत मानते हैं। गुरु को ज्ञान का स्रोत, सत्य का प्रतीक और मोक्ष का मार्गदर्शक माना जाता है। गुरु का महत्व केवल आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में भी उनका गहरा प्रभाव होता है। वे समाज में ज्ञान और नैतिकता का प्रचार-प्रसार करते हैं, जिससे एक सुसंस्कृत और सभ्य समाज का निर्माण होता है। गुरु निस्वार्थ भाव से पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ अपने पूरे जीवन भर अपने शिष्यों के जीवन को सफल बनाने के लिए कठोर मेहनत और तप करता है और उनके जीवन में ज्ञान की ज्योति जलाकर उनके जीवन से अंधकार को दूर करने का कार्य करते हैं। गुरू अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाले वाहक हैं। वे सही और गलत को पहचान करते हुए शिष्य को निरंतर कोशिश और आगे बढ़ते रहने का ऊर्जा प्रदान करते हैं।

निर्गुण और सगुण भक्ति साहित्य:

भक्ति साहित्य के भक्ति आंदोलन दो प्रमुख धराएं निर्गुण और सगुण भक्ति मार्ग पर केंद्रित था। लेकिन ईश्वर की उपासना के तौर तरीके और धार्मिक दृष्टकोण में भिन्नता रखती है। इस निर्गुण और सगुण भक्ति साहित्य में मौजूद प्रतिरोध का स्वर आधुनिक चेतना के बहुत निकट है। हिंदी साहित्य का मध्यकाल को मुख्यतः अपनी भक्तिधारा के लिए ही जाना जाता है। सगुण और निर्गुण ईश्वर की उपासना की जो पावन पद्धतियां संत कवियों ने समाज को दीं, वे आज भी अपने किसी न किसी रूप में जनसामान्य के व्यवहार में मिलती हैं। निर्गुण और सगुण भक्ति साहित्य भारतीय मध्ययकालीन भक्ति आंदोलन की विचारधराएं है। दोनों ही भक्ति साहित्य में ईश्वर को साकार रूप मानते हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं "निर्गुण मत के इष्ट भी कृपालु, सहृदय, दयावान, करुणाकर हैं, वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त हैं, किन्तु वे न अवतार ग्रहण करते हैं न लीला। वे निराकार हैं। सगुण मत के इष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं, साधूओं की रक्षा करते हैं और अपनी लीला से भक्तों के चित्त का रंजन करते हैं।"[5]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि भक्ति साहित्य मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साहित्य का सबसे प्रगतिशील स्वर रहा है। निर्गुण और सगुण दोनों भक्ति साहित्य आंदोलन की विचारधारा का मुख्य लक्षण ईश्वर को साकार ब्रह्म के रूप मानना था। निर्गुण और सगुण दोनों ही भक्ति साहित्य काव्य-धारा भारतीय समाज और साहित्य को समृद्द करती है। निर्गुण भक्ति सामाजिक समरसता, अद्वैत और व्यक्तिगत अनुभव पर बल देती है जबकि सगुण भक्ति की हृदय भावना और कथा-काव्य पर जोर देती है। लेकिन भक्ति साहित्य के सम्यक अध्ययन के लिए दोनों धाराओं की समझ आवश्यक है। भक्ति साहित्य में ब्रह्म के दो वैचारिक धाराएं मिलती है- निर्गुण और सगुण काव्य-धारा। जहां कबीर एवं नानक ने नाम स्मरण व अंतर्मुखी साधना पर जोर दिया, वहीं सूर और तुलसीदास ने मानवीय गुणों से युक्त अवतारवाद पर जोर देते हैं।

आध्यात्मिक चेतना:

भक्ति साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक विशिष्ट और समृद्द आयाम है, आध्यात्मिक चेतना का स्वरूप अत्यंत व्यापकता रूप में प्रकट होती है। भक्ति आंदोलन के दौरान लिखा गया साहित्य ने समाज में केवल ईश्वर प्राप्ति और समर्पण की भावनाओं को ही जागृत नहीं किया, बल्कि आत्म-निरीक्षण और आध्यात्मिक चेतना मार्ग का भी प्रशस्त किया। प्रो. प्रदीप श्रीधर द्वारा संपादित "भारतीय ज्ञान परंपराएं विषयगत अनुशीलन" पुस्तक की आलेख में प्रो.(डॉ) सुनीता रानी और सरिता लिखते है कि "भक्ति साहित्य के अंतर्गत निर्गुण व सगुण दोनों ही काव्यधाराओं ने धर्म, चिंतन, ज्ञान व प्रेम के द्वारा समाज में जागरूकता फैलाई। सामाजिक भेदभाव, रूढ़ियों का खंडन व धार्मिक कर्मकांड से मुक्ति दिलाने का प्रयास भी किया तो वहीं सामाजिक चिंतन का दार्शनिक आधार भी दिया।"[6]

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भक्ति साहित्य की निर्गुण और सगुण दोनों भक्ति धाराओं ने अपनी भक्ति साहित्य के माध्यम से संतों और कवियों ने सामाजिक बदलाव, एकरूपता और प्रेम का संदेश देने का कार्य किया जिससे जन चेतना में एक सामाजिक चिंतन की प्रवृत्ति का उदय हुआ। भक्ति साहित्य की भारतीय ज्ञान परंपरा आध्यात्मिक चिंतन पर प्रो. (डॉ) सुनीता और सरिता लिखते है कि "भक्ति साहित्य के संत कवियों ने इस परंपरा को सहज व सरल भाषा में जनमानस तक पहुंचाने का काम किया तथा लोगों में धर्म, प्रेम, आपसी सौहार्द, सहिष्णुता व समनता की भावना को विकसित किया। विश्व बंधुत्व की भावना व मानवता को आत्मसात करने का संदेश दिया जो कि यह परंपरा सदियों से इन्हीं भावनाओं की निर्वाहक रही है।"[7]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि भक्ति साहित्य काव्य धारा के कबीरदास, नामदेव, तुलसीदास, रैदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुंदरदास, जायसी, सूरदास, नंदास, मीराबाई, रविदास, नाभादास और रसखान आदि संत कवियों ने अपनी रचनाओं में आध्यात्मिक सत्यों को कथाओं के माध्यम से समाज के अंतिम व्यक्तियों तक सहज और सरल लोकभाषा में प्रस्तुत किया, जिससे तत्कालीन समाज के जन-मानस तक पहुंच सका।

निष्कर्ष:

भक्ति साहित्य गुरु-शिष्य परंपरा हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का सर्वाधिक उबलब्धि व सशक्त साधन रहा है। इस काल में गुरु को ज्ञान का अंतिम स्रोत एवं मोक्ष का आधार माना गया है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के सभी संत और कवियों ने भक्ति के माध्यम से सामाजिक विषमता और बह्याडंबरों का जोरदार प्रहार कर मानवीय समता, प्रेम, करुणा, लोकधर्म और सहिष्णुता का संदेश दिया। भक्ति साहित्य में माध्यम से कबीरदास, तुलसीदास, जायसी मीराबाई, नंदास और सूरदास इत्यादि संत कवियों ने प्रेम, लोकधर्मी, कर्तव्यबोध एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य को अपनी जीवन में उतारने का उपदेश दिया और जनमानस में अपनी ज्ञान और शिक्षाओं के माध्यम से आत्मविश्वास को भी बढ़ाने का काम किया। संत कवियों ने गुर-शिष्य परंपरा की महत्व और भारतीय ज्ञान परंपरा और प्राचीन ग्रंथों के जठिल ज्ञान को भावनाओं और लोकानुभावों के रस को डुबोकर सहज और सरल भाषा में जन-मानस तक पहुंचाया जो भक्ति साहित्य का सबसे उत्कृष्ट काम था। भक्ति साहित्य की गुरु-शिष्य परंपरा से आध्यात्मिक और धार्मिक बदलाव ही नहीं हुआ बल्कि बौद्दिक चिंतन को प्रोत्साहन मिला। भक्ति साहित्य की गुरु-शिष्य परंपरा आज भी वर्तमान समय में तर्कसंगत बनाए हुए हैं। आज भी भारतीय संस्कृति में गुरू-शिष्य की परंपरा जीवित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी साहित्यवचन रवि का सरल इतिहास, पुनर्मुद्रण: 2023, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, 3-6-752 हिमायत नगर, हैदराबाद 500 029 (तेलंगाना), भारत, पृष्ट सं.- 11
2. खण्डेलवाल, डॉ. जयकिशन प्रसाद, हिंदी साहित्य कि प्रवृत्तियां, श्री विनोद पुस्तक मंदिर कार्यालय: डॉ रांगेय राघव मार्ग, आगरा-2, सोलहवां संशोधित संस्करण: 2013, पृष्ट सं.- 136
3. वही, पृष्ट सं.- 136
4. वही, पृष्ट सं.- 136
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पुनर्मुद्रण: 2023, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, 3-6-752 हिमायत नगर, हैदराबाद 500 029 (तेलंगाना), भारत, पृष्ट सं.- 14
6. श्रीधर प्रो. प्रदीप, भारतीय ज्ञान परंपराएं विषयगत अनुशीलन, प्रथम प्रकाशन: 2025, सदीनामा प्रकाशन 38E, प्रिंस बख्तियार सह रोड कोलकाता- 700033, पृष्ट सं.- 58
7. वही, पृष्ट सं.- 59